अध्यात्म ज्ञान एवं चिन्तन संस्था
(SOCIETY FOR ADHYATMA STUDIES)

17, सिविल लाइन्स, कमिश्नर ऑफिस के सामने, मुरादाबाद – 244001
मो0 9412241221

ब्रह्म ज्ञान विचार गोष्ठी – 37

08.05.2011

"हिन्दू धर्म के अद्वितीय सिद्धांत"
(जो अन्य धर्मों में नहीं हैं)

निवेदक

डॉ0 यू0 के0 शाह
शाह नर्सिंग होम,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9359716440

रविन्द्र नाथ कत्याल
अमर बसेरा,
सिविल लाइन्स, मुरादाबाद
फोन नं0 9837041945

सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
17, सिविल लाइन्स,
मुरादाबाद
फोन नं0 9412241221

श्रीमद् भगवद् गीता
अध्याय – 3
"कर्मयोग"

अर्जुन उवाच –
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।

अर्जुन ने कहा –
हे जनार्दन! यदि कर्मों की अपेक्षा आपके विचार से ज्ञान श्रेष्ठ है तब फिर मुझे भयंकर कर्म में क्यों लगाते हैं।

व्यामिश्रेण इव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहम् आप्नुयाम्।।

आपके मिले जुले वचन मेरी बुद्धि को भ्रमित कर रहे हैं। अतः आप उस एक बात को निश्चय करके कहिए जिससे मैं कल्याण को प्राप्त होऊं।

श्री भगवान उवाच –
लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।

श्री भगवान ने कहा –
हे निष्पाप अर्जुन! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्वारा पहले ही कही गई है – ज्ञानियों की ज्ञान योग से और योगियों की कर्म योग से।
निष्ठा = साधन की परिपक्व अवस्था

न कर्मणाम् अनारम्भात् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनात् एव सिद्धिं समधिगच्छति।।

मनुष्य न तो कर्मों के प्रारम्भ भी न करने से निष्कर्मता को प्राप्त होता है और न कर्मों के त्यागने से सिद्धि को प्राप्त होता है।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।

क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता है। निःसंदेह सभी प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा अवश होकर कर्म करते हैं।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

जो मूढ़ बुद्धि व्यक्ति कर्मेन्द्रियों को हठ पूर्वक रोककर इन्द्रियों के भोगों को मन से चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी कहा जाता है।

यस्तु इन्द्रियाणि मनसा नियम्य आरभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगम् असक्तः स विशिष्यते।।

और हे अर्जुन! जो व्यक्ति मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो हि अकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेत् अकर्मणः।।

तुम शास्त्र द्वारा नियत कर्म को करो क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तुम्हारा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नही होगा।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्य ध्वमेष वोऽस्तु इष्टकामधुक्।।

प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा को रचकर कहा कि इस यज्ञ द्वारा तुम वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमको इच्छित कामनाओं को देने वाला होवे।

परस्परं देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
भावयन्तः श्रेयः परम् अवाप्स्यथ।।

इस यज्ञ द्वारा तुम देवताओं का वर्धन करो और देवता तुम लोगों का वर्धन करें। इस प्रकार एक दूसरे का वर्धन करते हुए परम् कल्याण को प्राप्त होओ।

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैः दत्तान् अप्रदाय एभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।।

यज्ञ द्वारा वर्धित देवता तुम्हारे लिए प्रिय भोगों को देंगे। उनके द्वारा दिए हुए भोगों को जो पुरुष उन्हे बिना दिए ही भोगता है वह निश्चय ही चोर है।

यज्ञशिष्ट आशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुन्जते ते त्वघं पापा ये पचन्ति् आत्मकारणात्।।

यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं और जो पापी व्यक्ति केवल अपने लिए ही पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है। वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होता है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं न अनुवर्तयति इह यः।
अघायुः इन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।

हे पार्थ! जे व्यक्ति इस प्रकार चलाये हुए सृष्टि चक्र के अनुसार कर्मों को नहीं करता है वह इन्द्रियों के सुख को भोगने वाला पाप आयु व्यर्थ ही जीता है।

यस्तु आत्मरतिरेव स्यात् आत्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते।।

परन्तु जो मनुष्य आत्मा में ही प्रीति वाला और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही संतुष्ट है उसके लिए कोई कार्य नहीं है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परम् आप्नोति पूरुषः।।

इस कारण तुम अनासक्त होकर निरन्तर कर्तव्य कर्म का अच्छी प्रकार आचरण करो क्योंकि अनासक्त पुरुष कर्म करता हुआ परम ब्रह्म को प्राप्त होता है।

कर्मणैव हि संसिद्धिम् आस्थिता जनकादयः।
लोकसङ्ग्रहम् एवापि सम्पश्यन् कर्तुम् अर्हसि।।

जनक आदि ज्ञानी जन भी आसक्तिरहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं इसलिए लोक संग्रह को देखते हुए भी कर्म ही करने योग्य है।

यद्यत् आचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तत् अनुवर्तते।।

श्रेष्ठ पुरुष जो–जो आचरण करता है अन्य व्यक्ति भी उसी के अनुसार करते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है अन्य जन उसी के अनुसार क्रियावान होते हैं।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किन्चन।
नानवाप्तम् अवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।

हे अर्जुन! मुझे तीनों लोकों में कंछ भी कर्तव्य नहीं है तथा कोई भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नही है तो भी मै निरन्तर कर्म करता हूँ।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मणि अतन्द्रितः।
मम वर्त्म अनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

क्योंकि यदि मै जागरुक रहकर कर्म न करुं तो हे अर्जुन! सभी मनुष्य मेरे बर्ताव के अनुसार करने लगेंगे।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्यात् विद्वान् तथासक्तः चिकीर्षुः लोकसङ्ग्रहम्।।

हे भारत! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जैसे कर्म करते हैं वैसे ही विद्वान अनासक्त होकर लोक की भलाई चाहता हुआ कर्म करे।

न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।।

विद्वान को चाहिए कि कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानी व्यक्तियों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करे (अर्थात कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे)। किन्तु स्वयं परमात्मा के स्वरुप में स्थित हुआ सब कर्मों को अच्छी प्रकार करता हुआ उनसे भी वैसे ही कराये।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं परन्तु अहंकार से मोहित व्यक्ति "मै करता हूँ" ऐसा मान लेता है।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।

परन्तु हे महाबाहो! गुण विभाग और कर्म विभाग के तत्व को जानने वाला समस्त गुण गुणों में ही बर्तते हैं ऐसा मानकर आसक्त नही होता।

पांच महाभूत आकाश, पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि, तथा मन, बुद्धि, अहंकार और पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां और पांच विषय शब्द, रुप, रस, गन्ध व स्पर्श, इन सबके समुदाय का नाम गुण विभाग है और इनकी परस्पर चेष्टाओं का नाम कर्म विभाग है। गुण विभाग और कर्म विभाग से आत्मा को अलग अर्थात निर्लेप जानना ही इनका तत्व जानना है।

प्रकृतेः गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।

तान् अकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्न विद् न विचालयेत्।।

प्रकृति के गुणों से मोहित हुए व्यक्ति गुण और कर्मों मे आसक्त होते हैं। उन अच्छी प्रकार न समझने वाले मूढ़ व्यक्तियों को अच्छी प्रकार जानने वाला विद्वान चलायमान न करे।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्य अध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।

ध्याननिष्ठ चित्त से सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें समर्पण करके आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध करो।

ये मे मतमिदं नित्यम् अनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तो अनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।

जो मनुष्य संशयरहित होकर और श्रद्धा से युक्त होकर मेरे इस मत के अनुसार सदा कार्य करते हैं वे सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त हो जाते हैं।

ये त्वेतत् अभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढान् तान्विद्धि नष्टान चेतसः।।

और जो संशय करने वाले अज्ञानी मेरे मत के अनुसार कार्य नही करते उन माहित चित्त वालों को तुम कल्याण से भ्रष्ट हुए ही जानो।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।

सभी प्राणी अपनी प्रकृति के अनुसार कर्म करते हैं। ज्ञानवान भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। इसमें हठ करना व्यर्थ है।

इन्द्रियस्य इन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशम् आगच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

सभी इन्द्रियों के भोगों में स्थित जो राग और द्वेष हैं उनके वश में नहीं होओ क्योंकि वे दोनो ही कल्याण मार्ग में विघ्न करने वाले महान शत्रु हैं।

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

अपना धर्म गुणरहित होते हुए भी दूसरे के धर्म से श्रेष्ठ है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भयभीत करने वाला है।

अर्जुन क्षत्रिय है और युद्ध करना उसका धर्म है। यदि वह युद्ध से विरत होकर कोई अन्य कार्य करता है तब वह अपने धर्म का पालन नही करेगा। मृत्यु तो दोनो स्थितियों में होनी ही है।

अर्जुन उवाच–
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

अर्जुन ने कहा–

हे कृष्ण! फिर यह पुरुष बलात् लगाये हुए के सदृश न चाहता हुआ भी किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है।

श्री भगवान उवाच–
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धि एनमिह वैरिणम्।।

श्री भगवान ने कहा–

रजोगुण से उत्पन्न यह काम है, यह क्रोध है। यही अग्नि के सदृश भोगों से तृप्त न होने वाला महापापी है। इसको तुम बैरी ही जानो।

धूमेन आव्रियते वन्हिः यथादर्शो मलेन च।
यथा उल्बेन आवृतो गर्भस्तथा तेनेदम् आवृतम्।।

जैसे धुएं से अग्नि और धूल से दर्पण ढक जाता है, जैसे झिल्ली से गर्भ ढका होता है वैसे ही उस काम–क्रोध द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरुपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च।

और हे अर्जुन! इस अग्नि सदृश कभी सन्तुष्ट न होने वाले कामरुप और ज्ञानियों के नित्य बैरी से ज्ञान ढका हुआ है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धि अस्य अधिष्ठानम् उच्यते।
एतैः विमोहयति एषः ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।

इन्द्रियां मन और बुद्धि इसके निवास स्थान कहे जाते हैं और यह (काम) इन्ही के द्वारा ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित करता है।

तस्मात्त्वम् इन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशनम्।।

इसलिए हे अर्जुन! तुम पहले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान के नाश करने वाले इस पापी काम को निश्चय पूर्वक समाप्त कर दो।

इन्द्रियाणि पराणि आहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

इन्द्रियों को श्रेष्ठ (बलवान और सूक्ष्म) कहते हैं, इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन है, मन से श्रेष्ठ बुद्धि है और बुद्धि से अत्यन्त श्रेष्ठ वह आत्मा है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्य आत्मानम् आत्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरुपं दुरासदम्।।

इस प्रकार बुद्धि से परे उस परम श्रेष्ठ आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा अपने मन को वश में करके हे महाबाहो! इस दुर्जय कामरुप शत्रु को मार डालो।

इति तृतीयोऽध्यायः